International Journal of Applied Research 2017; 3(7): 186-188

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 3.4
IJAR 2017; 1(4): 186-188
www.allresearchjournal.com
Received: 13-01-2015
Accepted: 12-02-2015

डॉ0 रमेंश कुमार
हिंदी विभाग,
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र,
हरियाणा, भारत.

Correspondence
डॉ0रमेंश कुमार
हिंदी विभाग,
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र,
हरियाणा, भारत.

'अनामदास का पोथा' उपन्यास के प्रमुख पात्रों का विश्लेषणे

डॉ0 रमेंश कुमार

प्रस्तावना

'अनामदास का पोथा'आचार्य द्विवेदी जी की अन्तिम औपन्यासिक कृति है। इसका प्रकाशन सन् 1976 ई0 में हुआ था। इसमें द्विवेदी जी की आधुनिकता बोध सर्वाधिक प्रकट हुआ है। इस उपन्यास की कथावस्तु का चयन पौराणिक यगु से किया है, किन्तु प्रस्तुतीकरण का भाव नितांत आधुनिक है। इस उपन्यास की कथा छान्दोग्योपनिशद तथा वृहदारण्यक उपनिशद से ली गई है। इन दोनों उपनिषदों के मंथन से आचार्य द्विवेदी ने कथानक के बाह्य कलेवर की रचना की है। हलद्वीप की प्रसिद्ध मंजुला की कोख से अयाचित, अनाहूत, अवांछित जन्मी मृणाल मंजरी ने जननी का मुख नहीं देखा था। उसकी जननी मंजुला भी नहीं जानती थी कि मृणाल मंजरी की मृणमयी काया का जनक कौन है। परन्तु उसके चिन्मय रूप के पिता आर्य देवरात है। मंजुला ने देवरात को लिखे पत्र में स्पष्ट कहा था– "यह पाप–वृति की पुण्य परिणति हैं। इसकी मृणमयी काया परबषा माता का दान है और इसकी जो चिन्मयी ज्योति होगी। वह तुम्हारे जैसे मनस्वी पिता की देन होगी। सो आर्य यह तुम्हारी कन्या है इसके तुम्ही पिता हो, माता हो औश्र गुरू हो। तुम्हारा धन तुम्हे समर्पित है।"[1]

मृणाल मंजरी को उसकी जननी मंजुला दो–तीन वर्ष की वय की पालने में पड़ी, परिम्लान कमल–कालिका–सी छोड़ गयी थी। देवरात ने उत्तरदायित्व के रूप में मृणाल मंजरी को पाया और वे तन–मन से उसके लालन–पालन, रक्षण–शिक्षण में लग गये। वृद्धगोप की पत्नी ने इस बालिका को अपने घर ले जाकर उसे पालने का आग्रह देवरात से किया था किन्तु देवरात ने उनसे स्पष्ट कर दिया था– "क्षमा करें आर्य ! यह बालिका देवरात के पास ही रहेगी। उसकी माता की अन्तिम इच्छा यही हैं। मेरे ऊपर दया करें, मैं इस शपथ की उपेक्षा नहीं कर सकता।"[2]

मृणाल मंजरी का बाल्यकाल देवरात के आश्रम पर सुख–पूर्वक बीता। उसने,धर्म, इतिहास, राजनीति की शिक्षा के साथ, नृत्य–संगीत आदि ललित कलाओं में कौशल प्राप्त किया था। श्याम रूप और आर्यक के साथ उसका बाल जीवन निर्वाध गति से बीता। श्याम रूप भाग गया और आर्यक उसे खोजने को प्रस्तुत हुआ मृणाल क्रिड़ा सखा आर्यक को व्याकुल मन से शीघ्र लौटने की शर्त पर जाने देती है पर आर्यक आश्रम पर नहीं लौटता।

इस मुखरा पीर वधु की यह सूचना कि मृणालनगर की प्रसिद्ध नृत्यगना गणिका मंजुला की पुत्री है, मृणाल की मन को मथ गई थी। हलद्वीप के अनाचारी राजा का धुर्ततापूर्ण पत्र उसे और भी पीड़ा पहुंचा गया था। पत्र प्रेशक चन्दनक पर मृणाल ने महिमामर्दिनी बनकर दण्ड प्रहार कर दिया था। उस विष लिखित पत्र को मृणाल ने अपने प्रिय आर्यक के पास भेज दिया था। मृणाल का पत्र पाकर आर्यक तीन वर्ष का अन्तराल के बाद देवरात के आश्रम पर मृणाल के समक्ष उपस्थित हुआ। वह मृणाल की रक्षा का भार स्वीकार करता है और उसे कभी अकेली न छोड़ने का वचन देता है।[3] भावकिशोर मृणाल आर्यक के आलिंगन पास में बन्ध जाती है। आर्यक जैसे वीर पुरूष को जीवन संगिनी के रूप में पाकर वह स्वयं को धन्य मानती है।

वृद्धगोप को पुत्र आर्यक के निर्णय के समक्ष झुकना पड़ता है देवरात दुहिता, दो माताओं (शर्मिष्ठा और मंजुला) की पुत्री अब आर्यक पत्नी बन गई है। आर्यक ने दुर्वृत राजा को पराजित किया तथा सम्राट समुन्द्रगुप्त की ओर से हलद्वीप का राजा बन गया और सम्राट के महाबलाधिकृत के रूप में विजय अभियान पर चला गया। मृणाल के जीवन में पुनः एकाकीपन आ गया। उसने एक पुत्र को जन्म दिया तथा वीर पति की इस धरोहर को सम्भालने में पुरी तरह लग गई। राज्यामात्य पुरन्दर ने मृणाल को राजकाज देखने और प्रजा पालनाथ आमंत्रित किया परन्तु वह अपना गांव घर छोड़ने को तैयार नहीं हुई। वह गौतम की गोपासी गृह पर अडिग रही। अमात्य पुरन्दर और प्रजा मृणाल को रानी मानती थी। परन्तु वह व्रत उपवास का तपोमय जीवन बीताती रही प्रजा तपस्विनी रानी को पाकर प्रसन्न थी। आर्यक चन्द्र प्रकरण में व्यवहार में खड़ा किया जाता है।

परन्तु मृणाल स्पष्ट कहती है– "धर्मतः यह मामला मेरे चन्द्रा और आर्यक के बीच का है, चौथा इसमें हस्तक्षेप नहीं कर सकता। राज्य भी नहीं।"[4] मृणाल के इस विचार से सम्राट चन्द्रगुप्त को भी अपना निर्णय बदलना पड़ा वह आर्यक पर लगाये गये सवेराचार के विषय में पुनः आदेश प्रसारित करता है– "हलद्वीप की, देवरात की दुलारी, बन्धु गोपाल आर्यक की सतधर्मचारिणी, सती–शिरोमणी मृणाल मंजरी आर्यक का पता लगाने उज्जयिनी जायेगी तथा समुद्रगुप्त और उनकी पुरी सेना दूर–दूर रहकर उनकी रक्षा करेगी।"[5]

विन्ध्य पर्वत के बाबा के पास आर्यक का पता लगाने के लिए वह स्वयं जाना चाहती थी परन्तु उसने वहां चन्द्रा को भेजा था। अब बहिन चन्द्रा, पुत्र शोभन, सुमरू काका और कुछ अनुचरों के साथ वह उज्जयिनी की ओर नाव से चल पडती हैं, भटके पति गोपाल आर्यक को खोजने हेतु। मार्ग में विन्ध्यादेवी के निकट चन्द्रा मृणाल को सिद्ध बाबा का आश्रम दिखाती है। बटेष्वर तीर्थ पर मृणाल सिद्ध बाबा के दर्शन करती है। वह समाधिस्थ–सी होकर शिव ध्यान करती है। उसे प्रथम शिवजी के और तदनन्तर आर्यक के अन्तर्दर्शन होते है। वह चन्द्रा को बताती हैं– "मानों दीदी वे ही थे.... कह रहे थे–चिन्ता मत करो मैना मैं आ रहा हूँ। तुम्हारी चन्द्रा दीदी के पैरों पड़कर क्षमा मागूंगा। तुम उनसे कहना ि कवे क्षमा कर दें। मैंने चन्द्रा के साथ अन्याय किया है, तुमने उसे प्यार देकर मेरी लाज बचा ली।"[6] इसी सिद्ध स्थन बटेष्वर तीर्थ पर मृणाल अभ्यागत स्वागत की तैयारी में लग जाती है। वह आर्य से मिलने को उत्कण्ठित है पर वह प्रथम चन्द्रा को उनसे मिलाना चाहती है। वह प्रार्थना करती हैं– हे देवाधिदेव इस सौभाग्योदय के दिन उससे कोई दोष न हो जाये। मृणाल की तपस्या पूर्ण हुई आर्यक आये मृणाल ने साधु नेत्रों से उन्हें निहारा और चन्द्रा को उनकी गोद में डाल दिया। अनुपम है इस सती की तपस्या, विरल है, ऐसा त्याग, दुर्लभ है ऐसा चरित्र।

मृणाल अत्यन्त रूपवती थी। उसके पूनम के चांद से मुख पर हास्य खेलता तो लगता मानों निखिल चराचर में जीवन का समुद्र लहरा उठा हो तीन वर्ष के प्रथम विछोह के बाद आर्यक देवरात के आश्रम पर मृणाल को देखता हैं, उसकी चतुरस्त्र उद्भिन्न देह को देखकर चकित हो जाता है। "उसके अंग–अंग से लावण्य–छटा झलक रही थी।"[7] आर्यक समुन्द्रगुप्त की सेना का प्रधनमात्य बनकर सैन्य–अभियान पर चला गया उसे अकेली छोड़कर और पुनः तीन वर्ष बाद उसको देखता है तब मृणाल का– "मुख पीला पड़ गया था, केश लटिया कर एकवेणी बन गये थे, हिरन की आंखे भीतर धस गयी थी।"[8] तीसरी बार के वियोग के बाद बटेष्वर तीर्थ में समाधिस्थ अपूर्व सुन्दरी मृणाल को देखकर दर्शनार्थी ऐसा अनुभव करते हैं– "मानों वे मूर्तिमती शिवकरूणा को देख रहे हों।"[9] आचार्य द्विवेदी जी ने मृणाल का वेश का वर्णन कम ही किया है। विरहकुला मृणाल को उन्होंने मलिन श्वेत शाटी पहने हुए चित्रित किया है। इसी वेश में वह जीन वर्ष बाद लौटे आर्यक को मिलती हैं।

जहां तक चरित्र का प्रश्न हैं, मृणाल मंजरी एक आदर्श भारतीय के रूप में चित्रित की प्रमुख विषेशतायें निम्नानुसार है– मृणाल तेजरूपा है। वह को अबला और पुरूष पर निर्भर रहने वाली, मानने को तैयार नहीं है। इसी कारण वह सिंहवाहिनी से आगे बढ़कर महिशमर्दिनी बनना चाहती हैं। देवरात का यह कथन कि महिशमर्दिनी रूप कविता में ही पड़ता हैं, वह स्वीकार नहीं कर पाती। वह सोचती है– "क्या की शील–रक्षा का कार्य पुरूष ही कर सकते हैं ? सिंहवाहिनी की उपासना का मतलब इतना ही है कि महिशमर्दिनी का काम पुरूषों पर छोड़कर, स्त्रियां उनकी आरती उतारा करें? स्त्रियां का धर्म क्या अधर्माचार का विद्वेश करना नहीं है।"[10]

हलद्वीप–नरेश के धूर्ततापूर्ण पत्र के वाहक चन्दनक की वह डण्डों से खबर लेती है और आर्यक के राजपद पाने का निमित बनती है। मृणाल स्वाभिमानिनी है। आर्यक पुरन्दर को हलद्वीप का अमात्य बनाकर समुद्रगुप्त के सैन्य–अभियान पर चला जाता है। पुरन्दर मृणाल को राजरानी के रूप में देखता है तथा मृणाल को राजाज्ञा देने के लिए आमन्त्रित करता है परन्तु मृणाल गौतम की गोपा–सी अडिग अपना घर–गांव नहीं छोड़ती और आर्यक को ही एक दिन उसके समक्ष उपस्थित होना पड़ता है। मृणाल का जीवन तप–त्याग युक्त है। मृणाल तीन वर्ष का विरह भोगकर आर्यक को पाती है तथापि उसे अगले अभियान पर जाने से रोकती नहीं है। वह अपने कारण आर्यक के यश को मलिन नहीं बनने देना चाहती है। मृणाल ईर्ष्या–द्वेश से मुक्त हैं। आर्यक उज्जयिनी से लौटकर मृणाल–चन्द्रा से मिलने जा रहा हैं, तब सोचता है– "और मृणाल? उस भोली से जाना ही नहीं कि मान क्या होता हैं, ईर्ष्या किसे कहते हैं, असूया किस खेत की मूली है? उसे अपना सुख क्या है, इसका पता नहीं। वह तो एक बात जानती है सुख वह है जिसमें आर्यक सुख रहे।"[11] मृणाल की क्षमाशीलता अद्भुत है। चन्द्रा द्वारा आर्यक को लिखे उपाम काम भावना युक्त पात्रों को उसने पढ़ा है परन्तु वह न चन्द्रा से वैर करती है, न आर्यक से घृणा। मृणाल सेवा, सतीत्व, मर्यादा और तपस्या की स्नोतस्वनी और साहस की मूर्ति है। आस्था भक्ति और दृढ़ता उसके जीवन के अंग हैं। उसे ईश्वर पर अडिग आस्था है। उसमें उदारता है, धैर्य है। अपने खोये हुये सर्वस्व को पाने की उसे प्रतीक्षा है पर आतुरता नहीं। वह चाहती है कि आर्यक आकर प्रथम चन्द्रा दीदी से मिले। अचेत चन्द्रा को वह आर्यक की गोद मे डाल देती है। मृणाल मंजरी का चरित्र आदर्श और पूजनीय भारतीय का चरित्र है। "मृणाल मंजरी श्रद्धा–भक्ति का मिलित विग्रह, शौलशोभा सुचिता की मोहन त्रिवेणी है।"[12] उसे देखकर प्रतापी सम्राट समुद्रगुप्त अपनने को धन्य मानता है। उसके पावन चरणों पर प्राणिपात करने को विवश होता है।

भाग्यहीना चन्द्रा का जन्म एक सामान्य कृषक परिवार में हुआ था। जब वह चार वर्ष की आयु की थी, तभी महामारी ने उससे जननी को छीन लिया था। चन्द्रा का बाल्यकाल उसकी उन्मार्ग–गामिनी विमाता के सम्पर्क में बीता और उस दूषित वातावरण से वह प्रभावित हुई। मात्र वासना, और अन्ध–पुंश्चल विचार उसके आस–पास मडराते रहे। चन्द्रा यौवनागम पूर्व से ही आर्यक के रूप बल पौरूष पर आकर्शित थी तथा उसे पतिरूप में पाने की चाह लिये हुये थी। परन्तु उनके पिता ने सम्भवतः लोभवश, उसका विवाह, उसकी इच्छा के विपरित श्री चन्द्र के साथ कर दिया था। नपुंशक श्रीचन्द्र न पति होने की पात्रता रखता था न चन्द्रा ने उसे कभी पति माना था। चन्द्रा अभी भी आर्यक को पति मानती थी। उसके लिये वह पत्र लिखती, उसे पाने के लिये वह प्रपंच भी रचती है। रात्रि में दुर्वृतों द्वारा पकड़े जाने ि नाटक वह इसलिये करती है कि उसे आर्यक से निपटने का अवसर प्राप्त हो जाये। आर्यक को वह हर हालत में पाना चाहती है। उसके प्रेम में भयंकर बुभुक्षा है, एक सतत अतृप्त काम–पिपासा। वह उस प्रेम में कोई दोष भी नहीं मानती है। वह सोचती है– क्या वह आर्यक मृणाल दोनों को समान रूप से प्यार नहीं कर सकती?"[13]

सम्राट समुद्रगुप्त से भी वह स्पष्ट कह देती है– "आर्यक की शस्त्र–विधि से विवाहिता पत्नी सचमुच वियोग–ज्वाला से जल रही है। मैं भी आर्यक की पत्नी हूँ परन्तु आर्यक मेरा मनोवृत पति है।"[14] यही घटना चन्द्रा–आर्यक के जीवन में परिवर्तन लाने वाली बन गयी। सम्राट की कुन्चित भृकुटियों की उपेक्षा करके चन्द्रा मृणाल के पास हलद्वीप चली आती है यद्यपि अपनी स्पष्टोक्ति मानकर कभी–कभी वह पश्चताप भी करती है। वह स्पष्ट कथन को दुमुर्खता कहकर पाप की संज्ञा देती है। इसी घटना से प्रभावित होकर सम्राट ने अपने विस्वस्त वीर आर्यक को पत्र लिखा और आर्यक को सेना से भागना–भटकना पड़ा। चन्द्रा मृणाल के घर आती है। उसका देहरी पर दुत्कार के साथ स्वागत करते हैं सुमेर काका– "यह कुल–वधू का घर है, तू यहां कैसे आई?" प्रश्न का उतर चन्द्रा भी दृढ़ता से देती है– कुलवधू

नहीं हूँ तो क्या हूँ तात! अपने घर ही तो आयी हूँ। मृणाल की कौन देख–रेख करेगा। श्यामरूप भाग गया, आर्यक भाग गया, देवरात भाग गया। मैंने सुना तो दौड़ी चली आयी।"[15] चन्द्रा निश्चल भाव से मृणाल की सेवा करती हैं चन्द्रा का वात्सल्य–भाव मृणाल और शोभन को पाकर तृप्त होता है। मृणाल से यह जानकर कि आर्यक के हृदय में चन्द्रा के लिये स्थान हैं, वह कुण्ठामुक्त हो जाती है चन्द्रा को मृणाल निरपराध कहती है तो चन्द्रा का मन हल्का हो जाता है। वह कहती है– मैं आर्यक के पीछे भागती हूँ यह मेरी विवशता है किन्तु तुझे मैं इच्छापूर्वक प्यार करती हूँ।"[16]

सम्राट भी यहां आकर मृणाल को प्रणाम निवेदन करता है और चन्द्रा को देखकर सोचता है– "हो सकता है पहले चन्द्रा में कोई दोष रहा हो। पर अब निश्चय सेवा के पसीने ने सब धो दिया है। केवल धो ही नहीं दिया पवित्रता का पानी भी चढ़ा दिया है।"[17]

निष्कर्ष

'अनामदास का पोथा' का मूल प्रस्थान बिन्दु–प्रेम है। 'तुम्हारा स्वभाव प्रेम है उसी के माध्यम से तुम सत्य का साक्षात्कार कर सकते हो। जीवन की निहित विराटता का साक्षात्कार प्रेम के द्वारा ही सम्भव है। यह द्विवेदी जी का निर्णय है। इसी को उन्होंने व्यापक तथा विराट् परिदृश्य मे देखा है।

1. पुनर्नवा, पृ0 56
2. पुनर्नवा, पृ0 29
3. पुनर्नवा, पृ0 166–167
4. पुनर्नवा, पृ0 238
5. पुनर्नवा, पृ0 281–282
6. पुनर्नवा, पृ0 50
7. पुनर्नवा, पृ0 108
8. पुनर्नवा, पृ0 275
9. पुनर्नवा, पृ0 41
10. पुनर्नवा, पृ0 297–298
11. पुनर्नवा, पृ0 285
12. पुनर्नवा, पृ0 285
13. पुनर्नवा, पृ0 107
14. पुनर्नवा, पृ0 124
15. पुनर्नवा, पृ0 177
16. पुनर्नवा, पृ0 285
17. पुनर्नवा, पृ0 310